‘गङ्गासागरीयम्’ महाकाव्य में छन्दयोजना

कार्तिक पण्ड्या

Research Officer
Shree Somnath Sanskrit University
Veraval.

‘गङ्गासागरीयम्[1]’ पं. विष्णुदत्त शुक्ल द्वारा प्रणीत काव्य कृति काव्यशास्त्रीय की अनेक विशेषताओं के कारण वस्तुतः स्तुत्य और अभिनन्दनीय है। गंगा और सागर को पं. विष्णुदत्त शुक्ल नए मानवीकृत कर सचेतन रूप में समासोक्ति के अध्ययन से नायक – नायिका रूप में निरूपित किया है, यहि इनकी मौलिक काव्य-उद्भावना है। जिसकी अद्भुत रसनिष्पत्ति से काव्य के सहृदय श्रोता-पाठक-चमत्कृत और आनन्दित हो जाते हैं। यही इस काव्य कृति और कृतिकार की महती सारस्वत सफलता है।

‘गङ्गासागरीयम्’ वस्तुतः एक प्रबन्ध काव्य है जिसमें गंगा जी के जीवन के एक अंश को सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। पतितपावनी गंगा का व्यक्तित्व मानव कोटि में नहीं, बल्कि देव कोटि में आता है। उनके अवतरण से लेकर सागर मिलन तक की कथा इस काव्य में चित्रित की गई है।

प्रबन्ध काव्य की जो भी विशेषतायें हैं वे इस काव्य में पूर्णरूप से विद्यमान है। कवि ने अनेक ऋतुओं, उषःकाल, निशा, हिमवान् का वैभव, राज्य की स्थिति, पर्वत, नदी, नद, निर्झर, सरोवर, पशु, विहंग, वन, उपवन, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र आदि का मोहक चित्र प्रस्तुत हुआ है। इस काव्य में इन चित्रों को बड़े ही मनोग्न शैली से वर्णित किया गया है। यदि कथावस्तु को आधार बनाया जाय तो कृति काव्य प्रतीत होती है, परन्तु यदि इसके लक्षणोंं को देखा जाये तो यह रचना महाकाव्य प्रतीत होती है। अतः उसे खण्डकाव्य और महाकाव्य के बीच की कोटि में रखा जा सकता है।

‘गङ्गासागरीयम्’ के रचयिता पं. विष्णुदत्त शुक्ल का जन्म सन १८८५ ई.में उत्तर प्रदेश के उन्नाव जनपद में स्थित कर्नाईपुर नामक गाँव मेंं हुआ था। उनके पूज्य पिता पं. मिश्री लाल शुक्ल और माता का नाम शिवरानी देवी शुक्ल था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा - दीक्षा उन्नाव में तत्पश्चात् उच्च शिक्षा वाराणसी के बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में सम्पन्न हुई। आचार्य जे.वी.कृपलानी और डॉ. सम्पूर्णानन्द की प्रेरणा से कालान्तर में काशी विद्यापीठ में भी शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् अध्यापन कार्य भी किया। पं. विष्णुदत्त शुक्ल आदर्श अध्यापक, उत्साही, साहसी, स्वाधीनता, सेनानी तथा दैनिक प्रताप एंव सहयोगी नामक पत्रों से जुडे एक निर्भीक पत्रकार, समर्पित साहित्य प्रेमी और श्रेष्ठ सामाजिक कार्यकर्ता थे। श्री शुक्ल निश्चल हृदय के हास, परिहास, प्रिय परम विनोद एवं जीवन्त सत् पुरुष थे। आजीवन अर्थाभाव अनुभव करते हुए भी ये जीवन संघर्ष से कभी विमुख नहीं हुए और कर्मठतापूर्वक साहित्य सर्जना के साथ समाज और राष्ट्र की सेवा की। जिससे ये आज भी एक आदर्श महापुरुष के रूप मेंं हम सब के लिए सम्माननीय एवं स्मरणीय बने हुए हैंं। ‘गङ्गासागरीयम्’ पं. विष्णुदत्त शुक्ल प्रणीत संस्कृत की एक आधुनिक अद्यतन कृति है। यह वस्तुतः एक श्रृंगार रसात्मक महाकाव्य है। कथा के परिकल्पित संभार मेंं अप्रतीतत्व की प्रतीति होती है।

महाकाव्य में विविध प्रकार के छन्दोंं का प्रयोग किया गया है और आदरणीय शुक्ल जी ने काव्य में इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, शिखरिणी, वसन्ततिलका, भुजंगप्रयात, मन्दाक्रान्ता प्रभृति छन्दोंं का बडी विद्वत्ता के साथ मनोहारी प्रयोग किया है। निम्नांकित श्लोक इस कथन की पुष्टि सर्वथा करते हैंं।

कीट विहंगाः पश्वो मनुष्याः सर्वाः प्रजास्यम्यगभेदभावैः।
मुक्तास्समस्त प्रतिबन्धनेन, स्वातन्त्र्यपूर्व विहरन्ति राज्ये॥
(गङ्गाराज्यवर्णनम् ३१)

[1] गङ्गासागरीयम्, पं. विष्णुदत्त शुक्ल, सं. डॉ. वृजलाल वर्मा, प्रयागराज, प्रथम संस्करण, १६८२

कवि कहता है कि उस राज्य में मनुष्योंं को ही नहीं, अपितु पशु पक्षियों को भी पूर्ण स्वतन्त्रता थी। इसलिए मनुष्य कीडे, मकोडे, पशु और पक्षी भी बिना किसी भेद-भाव के और हर प्रकार के बन्धन से मुक्त होकर स्वतन्त्रतापूर्वक राज्य में विहार करते थे।

अधोलिखित श्लोक उपजाति छन्द का एक सुन्दर उदाहरण है साथ ही इस श्लोक में उपमा अलंकार के भी दर्शन होते है।

तस्मान्नमहाशोक समाकुला सा, प्राप्नोति सौख्यं ननिमेषमात्रम्।
सुताावियोगात् व्यथते सदैव, मत्स्यो यथा वारनिधि विहाय॥
(गङ्गाराज्यवर्णनम् ५६)

शुक्ल जी कहते हैं कि अत्यन्त शोक से व्याकुल रानी क्षणमात्र के लिए भी सुख को प्राप्त नहीं कर पाती थी। वह पुत्री के वियोग के कारण एसी दुखी रहती थी जैसे मछली जल के भण्डार को छोडकर दुःखी रहती है।

निम्नांकित श्लोक मेंं अनुष्टुप् छंद का प्रयोग किया गया है और साथ ही सानुप्रासोपमा की छटा भी देखने को मिलती है।

एवं दिनानि दम्पत्योः सुखं दुःखमयापि च।
शीतताप मया यान्ति वार्षिका ऋतवो यथा॥
(गङ्गाराज्यवर्णनम् ५६)

कवि लिखता है कि दुःख-सुख, ग्रीष्म सर्दी के दिन, वर्ष और ऋतु बीतती चली जाती है अर्थात् सब नियमित गति से चलता ही रहता है।

निम्नांकित श्लोक वसन्ततिलका छन्द का एक सुन्दर उदाहरण है तथा बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया जा रहा है। साथ ही भारवि जैसी अर्थ गौरव की विशेषता भी उसमें प्राप्त होती है।

चाञ्चल्यमद्भुतमिदंहि बलान्निगुढं व्यक्तीकृतं तदपि लोके विलोचनेन।
प्रात्योबलता मनसि गूहर्ति यं मनुष्याः चित्ताशयं प्रकटयन्ति दृशस्तमेवा॥
(गङ्गाराज्यवर्णनम् ६९)

राजा की स्थिति का वर्णन करते हुए कि राजा बलपूर्वक अपनी भावनाओं को छुपाने का प्रयास करते थे परन्तु चञ्चल नेत्रों से वह बात प्रकट हो ही जाती थी। मनुष्य बलपूर्वक जिस बात को मन में छिपाना चाहता है, नेत्र हृदय की उस भावना को प्रकट कर देती है।

निम्नांकित श्लोक में मन्दाक्रान्ता का मनोहारी प्रयोग किया गया है। साथ ही इसकी सरसता भी देखने योग्य है।

नीत्वा सङ्गे सलिलकलशं मूर्तभूतस्ववांच्छं पूर्णीकर्तुं तत उदसहिष्टेप्सितं स्वप्रियायाः।
सन्तुष्टात्मा परिणतमनः कामनोऽति प्रसन्नः आयाद् गेहे सफल हिमवान् सत्प्रवासात् स्वकीयात्॥
(गङ्गावरप्रदानम् ५१)

राजा के द्वारा जलकलश को अपने महल मेंं ले जाने का चित्रण करते हुए आदरणीय शुक्ल जी कहते है कि अपनी आकांक्षा के साकार स्वरूप उस जल कलश को जो कि पत्नी की मनोकामना को पूर्ण करने वाला था, राजा प्रसन्न चित्त और सन्तुष्ट होकर साधना स्थल से अपने घर को लौट आये।

श्रद्धेय शुक्ल जी का निम्नांकित श्लोक मालिनी छंद का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है-

प्रखरतर निदाधैरूत्तराखण्डजीवा, विहंगपशुमनुष्याः व्याकुलास्ते तदासन्।
स्थितिमिति परिवीक्ष्य ज्ञानवान् मेघदूतः, परमसुखमयच्छत् छायया तेभ्य आरात्।।
(गङ्गादूतानुबन्धः २२)

कवि कुलगुरु कालिदास ने 'मेघदूतम्' नामक काव्य में मेघ की यात्रा का मनोहारी वर्णन प्रस्तुत किया है। उस काव्य में रामगिरि पर्वत पर निवास करता हुआ यक्ष मेघ को दूत बनाकर अल्कापुरी भेजता है। ताकि उसकी वियोगिनी पत्नी को यह ज्ञात हो सके कि उसका पति सकुशल है। शुक्ल जी ने कवि कुलगुरु का अनुसरण करते हुए मेघ को दूत बनाया है। कवि ने गंगा को नायिका, समुद्र को नायक तथा बादल के द्वारा एक दूसरे के गुण सौन्दर्य का श्रवण कर परस्पर आकृष्ट होते है। तथा मिलन संयोग की आकुलता में वियोग की वेदना नायक या नायिका को पीडित करने लगती है। मेघ के उदात्त हृदय का वित्रण करते हुए कवि कहता

है कि भीषण ग्रीष्मऋतु के कारण उत्तराखण्ड का पशु, पक्षी और मनुष्य बहुत अधिक व्याकुल थे। ज्ञानवान् मेघ ने ऐसी स्थिति समझकर अपनी छाया से सभी को सुख प्रदान किया।

कवि ने निम्नांकित श्लोक में शिखरिणी छन्द का मनोहारी प्रयोग किया है। अर्थगौरव भी श्लोक की एक विशेषता है।

व्यवस्था लोकानां स्वयमपि च लौकैविरचिता, विकुर्तशक्यन्ते निजकृतिमतस्ते नियमतः।
पदार्थयत् कोऽपि प्रजनयति लोके निजबलात्, तदायप्तो नाशोऽपि च भवति तस्य प्रकटतः॥
(गङ्गा-उद्योगप्रकरणम् १२)

शुक्ल जी कहते है कि मनुष्यों ने ही स्वयं मनुष्यो के हित के लिए लोक व्यवस्था का निर्माण किया है। अतः वे ही अपने द्वारा बनायी गयी व्यवस्था का खण्डन करने में सम्भवतः व्यस्त है। अलंकृत शैली में इसका वर्णन करते हुए कवि कहता है कि जो कोई भी इस संसार मेंं अपने बल से किसी पदार्थ को उत्पन्न करता है, उस वस्तु का विनाश भी उसी के अधीन रहता है।

कवि मेंं रसिकता का भी गुण है। निम्नांकित शालिनी छंद मेंं यह प्रतिभा स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। –

फुल्लेकञ्जे कोषवद्धद्विरेकाः , मुक्तिलबध्वा अति प्रसन्नाः बभूवुः।
कामार्तानां किन्तु मुक्त्वा पराग, नासीत् तेषां क्वापि मानाभिलाषः॥
(गङ्गाजन्मप्रकरणम् ६)

प्रातः काल का सुरम्य वर्णन करते हुए कवि कहता है कि कमलोंं के खिल जाने पर सम्पुट बन्ध और मुक्ति प्राप्त करके बहुत प्रसन्न हुए, किन्तु मधुर पराग का भोजन करके भी उन काम पीड़ित भौरोंं की आकांक्षा तृप्त नहीं हुई।

यह बात शत प्रतिशत सही है कि शुक्ल जी कालिदास से बहुत प्रभावित है। यह प्रभाव इस काव्य पर आद्योपान्त लक्षित होता है, किन्तु यह अन्धानुकरण नहीं है। घटनाओं के चित्रण, शब्दसौन्दर्य, विविध छन्दोंं का प्रयोग इन सभी में कवि ने 'रघुवंशम्', 'मेघदूतम्', 'कुमारसम्भवम्', 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' से प्रेरणा प्राप्त की है। कवि ने 'मेघदूतम्' की परंपरा मेंं ही 'गङ्गासागरीयम्' में क्षेत्र को संस्कृत भाषा में प्राप्त मिलते ही नहीं है। शुक्ल जी की धारणा है कि कवि तो निरंकुश होता है। उसे कहीं-कहीं स्वतन्त्र मार्ग पर भी चलना चाहिए । कविता कामिनी कांत, वाणी विलास, महाकवि कालिदास में भी यह विशेषता दृष्टिगोचर होती है। कारकों के प्रयोग में भी शुक्ल जी ने कहीं-कहीं स्वतन्त्र मार्ग अपनाया है, पर ऐसे उदाहरण नगण्य है।

कवि ने प्राकृतिक सौन्दर्य चित्रण के साथ –साथ सम्बन्धित वातावरण के सृजन पर विशेष ध्यान दिया है। पर्वत, नदी, समुद्र, समतल भूमि, पशु, पक्षी आदि के चित्रण में यह विशेषता विशेषरूप से परिलक्षित होती है।

प्रस्तुत सन्दर्भ में इतना ही निर्दिष्ट कर देना पर्याप्त होगा कि गंगापरक काव्य-वाङ्मय समूचे संस्कृत काव्य-वाङ्मय का नवनीत है। क्योंकि उसमें काव्य, इतिहास तथा धर्म की त्रिवेणी विद्यमान है। भावसम्पदा की दृष्टि से, अलंकार की दृष्टि से, बिम्बविधान एवं छन्दयोजना की दृष्टि से गंगापारक काव्य सचमुच अप्रतिम है।